5 शिवप्रसाद सिंह

व्यक्तित्व

शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त, 1928 ई० में वाराणसी जिले के एक किसान परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम चन्द्रिकाप्रसाद सिंह था। आपकी शिक्षा वाराणसी के उदयप्रताप विद्यालय और हिन्दू विश्वविद्यालय में एम० ए०, पी-एच० डी० तक हुई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष भी रहे। आपका लेखन-क्षेत्र व्यापक रहा है। आपने आलोचना, शोध, सम्पादन, जीवनी, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि सभी दिशाओं में काम किया है। इनका निधन 28 सितम्बर, 1998 ई० को वाराणसी में हुआ।

कृतित्व

आपके पाँच कहानी-संग्रह—'**आरपार की माला**', '**कर्मनाशा की हार**', '**मुरदा सराय**', '**इन्हें भी इन्तजार है**' तथा '**भेड़िये**' प्रकाशित हो चुके हैं। एक नाटक '**घाटियाँ गूँजती हैं**' तथा दो उपन्यास '**अलग-अलग वैतरणी**' तथा '**गली आगे मुड़ती है**' भी प्रकाश में आ चुके हैं।

कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के समसामयिक विविध पहलुओं को चित्रित किया गया है। ग्रामांचलों के प्रति आपका विशेष लगाव था। '**दादीमाँ**', '**पापजीवी**', '**बिंदा महाराज**', '**हाथ का दाग**', '**केवड़े का फूल**', '**सुबह के बादल**', '**अरुन्धती**', '**मुरदा सराय**' आदि आपकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। मानव के प्रति आपमें गहरी संवेदना रही है—विशेषकर उस मानव के प्रति जो व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं व रूढ़ियों से ग्रस्त हो। आप समन्वयशील विचारक थे। जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करते हुए आप उसे नैतिक समाधान देते रहे। यह नैतिकता पुराने आदर्शों से जुड़ी हुई है, किन्तु बौद्धिकता और तर्क की कसौटी पर भी खरी उतरती है। आपकी कहानियों में निम्न वर्ग के प्रतिनिधि पात्र स्थान पाते रहे हैं। चरित्र-चित्रण व्यक्तिपरक तथा मनोवैज्ञानिक होता है। बाह्य समस्याओं की पृष्ठभूमि में पात्रों के मनोद्वन्द्व को उभारने में आप विशेष कुशल थे।

कहानियों की भाषा प्रांजल है किन्तु व्यावहारिक और लोक-जीवन की शब्दावली के सटीक प्रयोग की विशेषता उसमें सर्वत्र मिलेगी। आपकी रचना-शैली सरल, सहज तथा चित्रात्मक है। रोमानी भावात्मकता और कवित्वपूर्ण वर्णनों के कारण आपकी कहानियाँ अत्यन्त मोहक और मर्मस्पर्शी हो उठी हैं।

'**कर्मनाशा की हार**' आपकी प्रसिद्ध कहानी है, जिसका अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन, डेनिश और रूसी भाषाओं में हो चुका है। रूसी में अनूदित हिन्दी कहानियों के संकलन 'चिनगारियाँ बुझी नहीं' की भूमिका में **विक्टरवालीन** लिखते हैं—"इस कहानी की मुख्य विशेषता है नाटकीय संघर्ष तथा पुरानी पड़ती रूढ़ियों के प्रति मानवीय आदर्शों की लड़ाई का चित्रण।" भैरव पाँड़े यह बात स्वयं अनुभव करते हैं कि मानवीय सम्बन्धों के संघर्षमय सन्दर्भ में असली मानवता क्या है।

कर्मनाशा की हार

(1)

काले साँप का काटा आदमी बच सकता है, हलाहल जहर पीनेवाले की मौत रुक सकती है, किन्तु जिस पौधे को एक बार कर्मनाशा का पानी छू ले, वह फिर हरा नहीं हो सकता। कर्मनाशा के बारे में किनारे के लोगों में एक और विश्वास प्रचलित था कि यदि एक बार नदी बढ़ आये तो बिना मानुस की बलि लिये लौटती नहीं। हालाँकि थोड़ी ऊँचाई पर बसे हुए नयीडीह वालों को इसका कोई खौफ न था; इसी से वे बाढ़ के दिनों में, गेरू की तरह फैले हुए अपार जल को देखकर खुशियाँ मनाते, दो-चार दिन की यह बाढ़ उनके लिए तब्दीली बनकर आती, मुखिया जी के द्वार पर लोग-बाग इकट्ठे होते और कजली-सावनी की ताल पर ढोलकें ठनकने लगतीं। गाँव के दुधमुँहे तक 'ई बाढ़ी नदिया जिया लेके माने' का गीत गाते, क्योंकि बाढ़ उनके किसी आदमी का जिया नहीं लेती थी। किन्तु पिछले साल अचानक जब नदी का पानी समुद्र के ज्वार की तरह उमड़ता हुआ नयीडीह से जा टकराया, तो ढोलकें बह चलीं, गीत की कड़ियाँ मुरझाकर होंठों में पपड़ी की तरह छा गयीं, सोखा ने जान के बदले जान देकर पूजा की, पाँच बकरों की दौरी भेंट हुई, किन्तु बढ़ी नदी का हौसला कम न हुआ। एक अन्धी लड़की, एक अपाहिज बुढ़िया बाढ़ की भेंट रहीं। नयीडीह वाले कर्मनाशा के इस उग्र रूप से काँप उठे, बूढ़ी औरतों ने कुछ सुराग मिलाया। पूजा-पाठ कराकर लोगों ने पाप-शान्ति की।

एक बाढ़ बीती, बरस बीता। पिछले घाव सूखे न थे कि भादों के दिनों में फिर पानी उमड़ा। बादलों की छाँव में सोया गाँव भोर की किरण देखकर उठा तो सारा सिवान रक्त की तरह लाल पानी से घिरा था। नयीडीह के वातावरण में हौलदिली छा गयी। गाँव ऊँचे अरार पर बसा था, जिस पर नदी की धारा अनवरत टक्कर मार रही थी। बड़े-बड़े पेड़ जड़-मूल के साथ उलटकर नदी के पेट में समा रहे थे। यह बाढ़ न थी, प्रलय का सन्देश था। नयीडीह के लोग चूहेदानी में फँसे चूहे की तरह भय से दौड़-धूप कर रहे थे। सबके चेहरे पर मुर्दनी छा गयी थी।

'कल दीनापुर में कड़ाह चढ़ा था पाँड़े जी', ईसुर भगत हकलाते हुए बोला। कुएँ की जगत् से बाल्टी का पानी लिये जगेसर पाँड़े उतर रहे थे। घबड़ाकर बाल्टी सहित ऊपर से कूद पड़े।

'क्या कह रहे थे भगत, कड़ाह चढ़ा था, क्या कहा सोखा ने?' चौराहे पर छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गयी। भगत अपने शब्दों को चुभलाते हुए बोले : 'काशीनाथ की सरन, भाई लोगों, सोखा ने कहा कि इतना पानी गिरेगा कि तीन घड़े भर जायेंगे, आदमी-मवेशी की छय होगी, चारों ओर हाहाकर मच जायेगा, परलय होगी।'

'परलय न होगी, तब क्या बरक्कत होगी? हे भगवान, जिस गाँव में ऐसा पाप करम होगा वह बहेगा नहीं, तब क्या बचेगा?' माथे के लुग्गे को ठीक करती हुई धनेसरा चाची बोली, मैं तो कहूँ कि फुलमतिया ऐसी चुप काहे है। राम रे राम, एक ने पाप किया, सारे गाँव के सिर बीता। उसकी माई कैसी सतवन्ती बनती थी। आग लाने गयी तो घर में जाने नहीं दिया। मैं तो तभी छनगी कि हो न हो दाल में कुछ काला है।'

'कुछ साफ भी कहोगी भौजी' बीच में जगेसर पाँड़े बोले, 'क्या हुआ आखिर...?'

'हुआ क्या, विधवा लड़की बेटा पैदाकर सुहागिन बनी है।'

'ऐं, कब हुआ....' 'सबकी आँखों में उत्सुकता के फफोले उभर आये। आगत भय से सबकी साँसें टँगी रह गयीं। तभी मिर्चे की तरह तीखी आवाज में चाची बोलीं—'कोई आज की बात है? तीन दिन हो गये।'

लोगों को परलय की सूचना देकर, हवा में उड़ते हुए आँचल को बरजोरी बस में करती चाची चौराहे की ओर बढ़ चली। गाँव का सारा आतंक, भय, पाप उनके पीछे कुत्ते की तरह दुम दबाये चले जा रहे थे। सबकी आँखों में नयीडीह का भविष्य था, रक्त की तरह लाल पानी में चूहे की तरह ऊभ-चूभ करते हुए लोग चिल्ला रहे थे। मौत का ऐसा भयंकर स्वप्न भी शायद ही किसी ने देखा था।

(2)

भैरो पाँड़े बैसाखी के सहारे अपनी बखरी के दरवाजे में खड़े बाढ़ के पानी का जोर देख रहे, अपार जल में बहते हुए साँप-बिच्छू चले जा रहे थे। मरे हुए जानवर की पीठ पर बैठा कौवा लहर के धक्के से बिछल जाता, भीगे चूहे पानी से बाहर निकलते तो चील झपट पड़ते। विचित्र दृश्य है—पाँड़े न जाने क्यों बुदबुदाये। फिर मिट्टी की बनी पुरानी बखरी की ओर देखा। पाँड़े के

दादा देस-दिहात के नामी-गिरामी पण्डित थे। उनका ऐसा अकबाल था कि कोई किसी को कभी सताने की हिम्मत नहीं करता था। उनकी बनवायी है यह बखरी। भाग की लेख कौन टारे। दो पुश्त के अन्दर ही सभी कुछ खो गया, मुट्ठी में बन्द जुगुनू हाथ के बाहर निकल गया और किसी ने जाना भी नहीं। आज से सोलह साल पहले माँ-बाप एक नन्हा लड़का हाथ में सौंपकर चले गये, पैर से पंगु भैरो पाँड़े अपने दो बरस के छोटे भाई को कन्धे से चिपकाये असहाय, निरवलम्ब खड़े रह गये—धन के नाम पर बाप का कर्ज मिला, काम-धाम के लिए दुधमुँहे भाई की देख-रेख, रहने के लिए बखरी जिसे पिछली बाढ़ के धक्कों ने एकदम जर्जर कर दिया है।

'अब यह भी न बचेगी'—पाँड़े के मुँह से भवितव्य फूट रहा था, जिसकी भयंकरता पर उन्होंने जरा भी ख्याल करना जरूरी नहीं समझा। दरारों से भरी दीवालें उनके खुरदरे हाथों के स्पर्श से पिघल गयीं, वर्षा का पानी पसीज कर हाथों में आँसू की तरह चिपक गया।

सनसनाती हवा गाँव के इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगा रही थी। भैरो पाँड़े के कानों में आवाज के स्पर्श से ही भयंकर पीड़ा पैदा हो गयी। बैसाखी उनके शरीर के भार को सँभाल न सकी और वे धम्म से चौकठ पर बैठ गये। बाजू के धक्के से कुहनी छिल गयी, चिनचिनाती कुहनी का दर्द उनके रोयें-रोयें में बिंध रहा था और पाँड़े इस पीड़ा को होंठों के बीच दबाने का प्रयत्न कर रहे थे।

'सब कुछ गया'—वे बुदबुदाये। कर्मनाशा की बाढ़ उनकी इस जर्जर बखरी को हड़पने नहीं, उनके पितामह की उस अमूल्य प्रतिष्ठा को हड़पने आयी है जिसे अपनी इस विपन्न अवस्था में भी पाँड़े ने धरती पर नहीं रखा। दुलार से पली वह प्रतिष्ठा सदा उनके कन्धे पर चढ़ी रही। 'मैं जानता था कि यह छोकरा इस खानदान का नाश करने आया है'—पाँड़े की आँखों में उनके छोटे भाई की तस्वीर नाच उठी। अठारह वर्ष का छरहरा पानीदार कुलदीप जिसकी आँखों में भैरो को माँ की छाया तैरती नजर आती, उसके काले काकुल को देखकर मुखिया जी कहते कि इस पर भैरो पाँड़े के दादा की लौछार पड़ी है। पाँड़े हो-हो कर हँस पड़ते। 'जा रे कुलदीप, बरामदे में बैठकर पढ़' भैरो पाँड़े मन में बुदबुदाते—'तेरे आँख में सौ कुण्ड बालू, हरामी कहीं का, लड़के पर नजर गड़ाता है, कुछ भी हुआ इसे तो भगवान कसम तेरा गला घोट दूँगा, बड़ा आया मुखिया जी' फिर जरा बढ़ के बोलते—'क्या लौछार पड़ेगी मुखिया जी, दादा के पास तो पाँच पछाही गायें थीं, एक से एक, दो थान दुह ले तो पँचसेरी बाल्टी भर जाती थी। यहाँ तो इस लौंडे को दूध पचता ही नहीं। फिर साल-बारह महीने हमेशा मिलता भी कहाँ है हम गरीबों को?'

'अब वह पुराने जमाने की बात कहाँ रही पाँड़े जी' मुखिया कहता और अपने संकेतों से शब्दों में मिर्चे की तिताई भरकर चला जाता। काले-काले काकुलोंवाला नवजवान कुलदीप उसे फूटी आँखों नहीं सुहाता, किन्तु भैरो पाँड़े के डर से वह कुछ कह न पाता।

भैरो पाँड़े दिन भर बरामदे में बैठकर रुई के बिनौले निकालते; तूँमते, सूत तैयार करते और अपनी तकली नचा-नचाकर जनेऊ बनाते, जजमानी चलाते, पत्रा देख देते, सत्यनारायण की कथा बाँच देते और इससे जो कुछ मिलता कुलदीप की पढ़ाई और उसके कपड़े-लत्ते आदि में खर्च हो जाता।

यह सब कुछ मर-मरकर किया था इसी दिन को—पाँड़े की आँखों में प्यास छा गयी, लड़के ने उन्हें किसी ओर का नहीं रखा। आज यहाँ आफत मची है, अपने पता नहीं कहाँ भाग कर छिपा है।

'राम जाने कैसे हो' सूखी आँखों से दो बूँदें गिर पड़ीं, 'अपने से तो कौर भी नहीं उठा पाता था, भूखा बैठा होगा कहीं, बैठे—मरे हम क्या करें।' पाँड़े ने बैसाखी उठायी। बगल की चारपाई तक गये और धम्म से बैठ गये। दोनों हाथों में मुँह छिपा लिया और चुप लेटे रहे।

(3)

पूरबी आकाश पर सूरज दो लट्ठे ऊपर चढ़ आया था। काले-काले बादलों की दौड़-धूप जारी थी, कभी-कभी हल्की हवा के साथ बूँदें बिखर जातीं। दूर किनारों पर बाढ़ के पानी की टकराहट हवा में गूँज उठती। भैरो पाँड़े उसी तरह चारपाई पर लेटे आँगन की ओर देख रहे थे। बीचोबीच आँगन के तुलसी-चौरा था, जो बरसात के पानी से कटकर खुरदरा हो गया था। पुराने पौधे के नीचे कई मासूम मरकती पत्तियोंवाले छोटे-छोटे पौधे लहराने लगे थे। वर्षा की बूँदें पुराने पौधे की सख्त पत्तियों पर टकराकर बिखर जातीं, टूटी हुई बूँदों की फुहार धीरे से मासूम पौधों पर फिसल जाती, कितने आनन्दमग्न थे वे मासूम पौधे। पाँड़े की आँखों

के सामने कातिक की वह शाम भी नाच उठी। दो बरस पहले की बात होगी। शाम के समय जब वे बरामदे में लेटे थे, फुलमत आयी, अपनी बाल्टी माँगने, सुबह भैरो पाँड़े ले आये थे किसी काम से।

'कुलदीप, जरा भीतर से बाल्टी दे देना' कहा था पाँड़े ने। सफेद साड़ी में लिपटी-लिपटाई गुड़िया की तरह फुलमत आँगन में इसी चौरे के पास आकर खड़ी हो गयी थी। और बाल्टी उठाने के लिए जब कुलदीप झुका था तो फुलमत भी अपने दोनों हाथों से आँचल का खूँट पकड़कर तुलसीजी की वन्दना करने के लिए झुकी थी। कुलदीप के झटके से उठने पर वह उसकी पीठ से टकरा गयी थी अचानक। तब न जाने क्यों दोनों मुस्करा उठे थे। भैरो पाँड़े क्रोध से तिलमिला गये थे। वे गुस्से के मारे चारपाई से उठे तो देखा कि कुलदीप बाल्टी लिये खड़ा था और फुलमत तुलसी चौरे पर सिर रखकर प्रार्थना कर रही थी। न जाने क्यों पाँड़े की आँखें भर आयीं। बरसात के दिनों के बाद इस खुरदरे चौरे को उनकी माँ पीली मिट्टी के लेपन से सँवार देतीं, फिर श्वेत बलुई माटी से पोतकर सफेद कर देतीं। शाम को सूखे हुए चबूतरे पर घी के दीपक जलाकर, माथा टेककर वे लड़कों के मंगल के लिए विनय करतीं। तब वे भी ऐसे ही झुककर आशीर्वाद माँगतीं और पाँड़े बगल में चुपचाप खड़े दियों का जलना देखा करते थे।

पाँड़े को सामने खड़ा देख कुलदीप हड़बड़ाया और फुलमत बाल्टी लेकर चुपचाप बाहर चली गयी। पाँड़े के चेहरे पर एक विचित्र भाव था, जिसे सँभाल सकने की ताकत उन दोनों के मन में न थी, और दोनों ही भय की कम्पन लिए इधर-उधर भाग खड़े हुए।

बहुत दिनों तक पाँड़े के चेहरे पर अवसाद का यह भाव बना रहा। कुलदीप डर के मारे उनकी ओर देख नहीं पाता, न तो पहले जैसी जिद कर सकने की हिम्मत होती, न तो हँसी के कलरव से घर के कोने-कोने को गुंजान बनाने का साहस। पाँड़े ने अपने दिल को समझाया, इसे लड़कों का क्षणिक खिलवाड़ समझा। सोचा, धरती की छाती बड़ी कड़ी है। ठेस लगते ही सारी गुलाबी पंखुरियाँ बिखर जायेंगी, दोनों को दुनिया का भाव-ताव मालूम हो जायेगा।

पाँड़े के रुख से फुलमत भी सशंक हो गयी थी, वह इधर कम आती। कुलदीप के उठने-बैठने, पढ़ने-लिखने पर पाँड़े की कड़ी नजर थी। वह किताब खोलकर बैठता तो दिये की टेम में श्वेत वस्त्रों से लिपटी फुलमत खड़ी हो जाती, पुस्तक के पन्ने खुले रह जाते और वह एकटक दीये की लौ की ओर देखता रह जाता। पाँड़े को उसकी यह दशा देखकर बड़ा क्रोध आता, पर कुछ कहते नहीं।

'कुलदीप' को एक बार टोक भी दिया था—'क्या देखते रहते हो इस तरह, तबीयत तो ठीक है न।'

'जी' इतना ही कहा था कुलदीप ने, और फिर पढ़ने लग गया था। दिये की टेम कुलदीप के चेहरे पर पड़ रही थी, जिसके पीछे घने अन्धकार में लेटे पाँड़े क्रोध, मोह और न जाने कितने प्रकार के भावों के चक्कर में झूल रहे थे। उन्हें फुलमत पर बेहद गुस्सा आता। रीमल मल्लाह की यह विधवा लड़की मेरा घर चौपट करने पर क्यों लगी है। पता नहीं कहाँ से बह-दह कर यहाँ आकर बस गये। कुलच्छनी, अब क्या चाहती है। बाप मरा, पति मरा, अब न जाने क्या करेगी। जाने कौन-सा मन्त्र पढ़ दिया। यह कबूतर की तरह मुँह फुलाये बैठा रहता है। न पढ़ता है, न लिखता है। हँसना, खेलना, खाना—सब भूल गया। पाँड़े चारपाई से उतरकर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे। पर कुछ निर्णय न कर सके।

समय बीतता गया। कुलदीप भी खुश नजर आता। हँसता-खेलता। पाँड़े की छाती से चिन्ता का भारी पत्थर खिसक गया। एक बार फिर उनके चेहरे पर हँसी की आभा लौटने लगी। रुई-सूत का काम फिर शुरू हुआ। गाँव के दो-चार उठल्ले-निठल्ले आकर बैठ जाते, दिन गपास्टक में बीत जाता। सुरती मल-मल ताल ठोंकते, और पिच् से थूककर किसी को गाली देते या निन्दा करते। इन सब चीजों से वास्ता न रखते हुए भी पाँड़े सुनते जाते। उनका मन तो चक्कर खाती तकली के साथ ही घूमता रहता, हूँ-हाँ करते जाते और निठल्लों की बातों में सन्नाटे को किसी तरह झेल ले जाते।

पाँड़े उसी चारपाई पर लेटे थे। अन्तर इतना ही था कि दिन थोड़ा और ऊपर चढ़ आया था, लहरों की टकराहट और तेज हो गयी थी, रक्त की तरह खौलता हुआ लाल पानी गाँव के थोड़ा और निकट आ गया था। उनकी नसें किसी तीव्र व्यथा से जल रही थीं। 'पाँड़े के वंश में कभी ऐसा नहीं हुआ था'—वे फुसफुसाये। बगल की दीवार में ताखे पर रामायण की गुटका रखी थी, उन्होंने उठायी, एक जगह लाल निशान लगा था। पिछले दिनों कुलदीप रात में रामायण पढ़ा करता था। जब से वह गया है आज तक गुटका खुली नहीं। पाँड़े के हाथ काँपे, गुटका उलटकर उनकी छाती पर गिर पड़ी। उठाकर खोला, वही लाल निशान—

कह सीता भा विधि प्रतिकूला॥
मिलइ न पावक मिटइ न सूला॥
सुनहु विनय मम विटप असोका॥
सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

पाँड़े की आँखें भरभरा आयीं। झरझर आँसू गिरने लगे। हिचकी लेकर वे टूट पड़े। 'यह चुड़ैल मेरा घर खा गयी'—शब्द फूटे, किन्तु भीतर घुमड़कर रह गये। 'गाली देने से ही क्या होगा अब। इतने तक रहता तो कोई बात थी, आज उसे बच्चा हुआ है, कहीं कह दे कि लड़का कुलदीप का है तो....नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता' पाँड़े बड़बड़ाये। उन्होंने अपने बालों को मुट्ठियों में कसकर खींचा, जैसे इनकी जड़ में पीड़ा जम गयी है, खींचने से थोड़ी राहत मिलेगी। वे उठना चाहते थे, किन्तु उठ न सके। आँखों के सामने चिनगारियाँ टूटने लगीं। उन्हें आज मालूम हुआ कि वे इतने कमजोर हो गये हैं। कुलदीप के जाने के बाद से आज तक उनका जीवन अव्यवस्था की एक कहानी बनकर रह गया है। चार-पाँच महीने से कुलदीप भागा है। पहले कई दिनों तक वे जरूर बहुत बेचैन थे, किन्तु समय ने उस दुःख को भुलाने में मदद की थी। आज फिर कुलदीप उनकी आँखों के सामने आकर खड़ा हो गया। बीती घटनाएँ एक-एक कर आँखों के सामने नाचने लगीं।

चैत के दिनों में गर्मी से जली-तपी कर्मनाशा किनारे के नीचे सिमट गयी थी। नदी के पेट में दूर तक फैले हुए लाल बालू का मैदान, चाँदनी में सीपियों के चमकते हुए टुकड़े, सामने के ऊँचे अरार पर घन-पलास के पेड़ों की आरक्त पाँतें, बीच में घुग्घू, चाहों और जल-विहार करनेवाले पक्षियों का स्वर.....कगार से नदी तक बने हुए छोटे-बड़े पैरों के निशानों की दो पंक्तियाँ.....सिर्फ दो।

'तुम मुझे मझधार में लाकर छोड़ तो नहीं दोगे।' घुटन और शंका में खोये हुए धीमे स्वर। श्यामा की चीरती दर्द-भरी आवाज।

एक चुप्पी, फिर हकलाती आवाज, 'मैं अपना प्राण दे सकता हूँ, किन्तु..... तुमको.....कभी नहीं.....।'

चाँदनी की झीनी परतें सघन होती जा रही थीं, सुनसान किनारे पर भटकी हवा की सनसनाहट में आवाजों का अर्थ खो जाता, कभी हल्के हास्य की नर्म ध्वनि, कभी आक्रोश के बुलबुले, कभी उल्लास तरंग, कभी सिसकियों की सरसराहट.....।

भैरो पाँड़े एक बार चाँदनी के इस पवित्र आलोक में अपनी क्रूरता और निर्ममता पर विचार करने के लिए रुक गये, तो क्या आज तक का उनका सारा प्रयत्न निष्फल था? क्या वे असाध्य को सम्भव बनाने का ही प्रयत्न करते रहे? एक क्षण के लिए भैरो पाँड़े ने सोचा-काश फुलमत अपनी ही जाति की होती, कितना अच्छा होता वह विधवा न होती.....तुलसी चौरी की वन्दना पाँड़े के मस्तिष्क में चन्दन की सुगन्ध की तरह छा गयी। उसका रूप, चाल-चलन, संकोच सब कुछ किसी को भी शोभा देने लायक था। एक क्षण के लिए उनकी आँखों के सामने सफेद साड़ी में लिपटी फुलमत की पतली-दुबली काया हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी, जैसे वह आँचल फैलाकर आशीर्वाद माँग रही हो। भैरो पाँड़े विजड़ित खड़े थे, विमूढ़।

'यह असम्भव है' पाँड़े ने बैसाखी सँभाली और नीचे की ओर लपके।

'कुलदीप' बड़ी कर्कश आवाज थी पाँड़े की।

दोनों सिर झुकाये सामने खड़े थे, आज पहली बार पाप की साक्षी में दोनों समवेत दिखायी पड़े थे। पाँड़े फिर एक क्षण के लिए चुप हो गये।

'मैं पूछता हूँ, यह सब क्या है' पाँड़े चिल्लाये, 'इतने निर्लज्ज हो तुम दोनों', पाँड़े बढ़कर सामने आये, फुलमत की ओर मुँह फेरकर बोले 'तू इसकी जिन्दगी क्यों बिगाड़ना चाहती है? क्या तू नहीं जानती कि तू जो चाहती है वह स्वप्न में भी नहीं हो सकता, कभी नहीं, कभी नहीं।'

फुलमत चुप थी, पाँड़े दूने क्रोध से बोले, 'चुप क्यों है चुड़ैल, बोलती क्यों नहीं?'

'मैं क्यों इनकी जिन्दगी बिगाड़ूँगी दादा'—वह सहसा एकदम निचुड़ गयी, 'मैंने तो इन्हें कई बार मना किया.....।'

'कुलदीप' पाँड़े दहाड़े, 'सीधे रास्ते पर आ जाओ, अच्छा होगा। तुमने भैरो का प्यार देखा है क्रोध नहीं; जिन हाथों से मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया है, उसी से तुम्हारा गला घोंटते मुझे देर न लगेगी।'

'दादा' कुलदीप हकलाया, 'हम दोनों....'

'पापी, नीच....' भैरो पाँड़े के हाथ की पाँचों अँगुलियाँ कुलदीप के चेहरे पर उभर आयीं, 'मैं सोचता था तू ठीक हो जायेगा' पाँड़े क्रोध से काँप रहे थे 'लेकिन नहीं, तू मेरी हत्या करने पर तुल ही गया है', वे फुलमत की ओर घूमकर चिल्लाये—'क्या खड़ी है डायन, भाग नहीं तो तेरा गला घोंटकर इसी पानी में फेंक दूँगा।'

अन्धड़ को पीते हुए तृषित साँप जैसा स्वर—यह सब मैंने किया था। पाँड़े चारपाई पर घायल साँप की तरह तड़फड़ाते हुए बुदबुदाये। उनकी छाती से सरककर रामायण की गुटका जमीन पर गिर पड़ी और उस पवित्र आराध्य वस्तु को उठाने का उन्हें ध्यान न रहा। कुलदीप दूसरे ही दिन लापता हो गया। पाँड़े अपनी बैसाखी के सहारे दिन भर गाँव-गिराँव की खाक छानते फिरे। तीन दिन

तीन रात बिना अन्न जल के वे पागल की तरह कुलदीप को ढूँढ़ते फिरे, किन्तु वह नहीं मिला। थक कर, हार कर पाँड़े वापस आ गये। बाप-दादों की इज्जत की प्रतीक इतनी लम्बी विशाल बखरी, जिसकी दीवालें मुँह दबाये शान्त, पुजारी के तप की तरह अडिग खड़ी थीं, किन्तु कितनी सुनसान, डरावनी, निष्प्राण पिंजर की तरह लगती थी यह बखरी। चौखट पर पैर रखते हुए पाँड़े की आत्मा कराह उठी—'चला गया!' बैसाखी रखकर पाँड़े आँगन के कोने में बैठ गये—अब वह कभी नहीं लौटेगा।

रात में उन्हें बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। कुलदीप को बचपन से लेकर आज तक उन्होंने कभी अपनी आँख की ओट नहीं होने दिया। छुटपन से लेकर आज तक खिलाया-पिलाया, पाला-पोसा और आज लड़का दगा देकर निकल गया। पाँड़े अधरों की मेड़ के पीछे बिथा के सैलाब को रोकने का असफल प्रयत्न करते रहे।

(4)

भोर होने में देर थी, उनींदी आँखें करुआ रही थीं, किन्तु मन की जलन के आगे उस दर्द का क्या मोल। पाँड़े उठकर टहलने लगे। सामने का बँसवार के भीतर से पूरबी क्षितिज पर ललछौहाँ उजास फूटने लगा था। गली की मोड़ के कच्चे मकान के भीतर से जाँत की घर्र-घर्र गूँज रही थी। एक घुमड़ता गरगराहट का स्वर, जिसके पीछे जाँतवाली के कण्ठ की व्यथा की इस सुरीली तान टूट-टूटकर कौंध उठती थी–

मोहे जोगिनी बनाके कहाँ गइले रे जोगिया

पाँड़े एक क्षण अवाक् होकर इस दर्दीले गीत को सुनते रहे। पियासे, भूले-भटके, थके हुए स्वर, पाँड़े की आत्मा में जैसे समान वेदना को पहचान कर उतरते चले जा रहे हों।

'अब रोने चली है चुड़ैल' पाँड़े पागल की तरह बड़बड़ाते रहे—'रो-रोकर मर, मैं क्या करूँ।'

बाढ़ के लाल पानी में सूरज डूब रहा था, पाँड़े बैसाखी के सहारे आकर दरवाजे पर खड़े हुए, नदी की ओर आदमियों की भीड़ खड़ी थी। वे धीरे-धीरे उधर ही बढ़े। सामने तीन-चार लड़के अरहर की खूँटियाँ गाड़कर पानी का बढ़ाव नाप रहे थे।

'क्या कर रहा है रे छबीला' पाँड़े बलात् चेहरे पर मुस्कराहट का भाव लाकर बोले।

'देखता नहीं लँगड़ा, बाढ़ रोक रहे हैं।'

पाँड़े मुस्कराये—जैसा बाप वैसा बेटा। तेरा बाप भी खूँटियाँ गाड़ कर कर्मनाशा की बाढ़ रोकना चाहता है।

'वह भीड़ कैसी है रे छबीले?'

'नहीं जानते, फुलमत को नदी में फेंक रहे हैं, उसके बच्चे को भी, उसने पाप किया है', छबीला फिर गम्भीर खड़े पाँड़े से सटकर बोला, 'क्यों पाँड़े चाचा, जान लेकर बाढ़ उतर जाती है न।'

'हाँ, हाँ' पाँड़े आगे बढ़े। बोतल की टीप खुल गयी थी। पाँड़े के मन में भयानक प्रेत खड़ा हो गया। 'चलो, न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। हुँ, चली थी पाँड़े के वंश में कालिख पोतने। अच्छा ही हुआ कि वह छोकरा भी आज नहीं है....।'

फुलमत अपने बच्चे को छाती से चिपकाये टूटते हुए अरार पर एक नीम के तने से सटकर खड़ी थी। उसकी बूढ़ी माँ जार-बेजार रो रही थी, किन्तु आज जैसे मनुष्य ने पसीजना छोड़ दिया था, अपने-अपने प्राणों का मोह इन्हें पशु से भी नीचे उतार चुका था, कोई इस अन्याय के विरुद्ध बोलने की हिम्मत नहीं करता था। कर्मनाशा को प्राणों की बलि चाहिए, बिना प्राणों की बलि लिये बाढ़ नहीं उतरेगी.....फिर उसी की बलि क्यों न दी जाय, जिसने पाप किया.....परसाल जान के बदले जान दी गयी, पर कर्मनाशा दो बलि लेकर ही मानी.....त्रिशंकु के पास की लहरें किनारों पर साँप की तरह फुफकार रही थीं। आज मुखिया का विरोध करने का किसी में साहस न था। उसके नीचता के कार्यों का ऐसा समर्थन कभी न हुआ था। 'पता नहीं किस बैर का बदला ले रहा है बेचारी से।' भीड़ में कई इस तरह सोचते, ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, किन्तु कौन बोले, सब मुँह सिये खड़े थे...।

'तुम्हारी क्या राय है भैरो पाँड़े' मुखिया बोला, 'सारे गाँव ने फैसला कर दिया—एक के पाप के लिए सारे गाँव को मौत के मुँह में नहीं झोंक सकते। जिसने पाप किया है उसका दण्ड भी वही भोगे....।'

एक वीभत्स सन्नाटा। पाँड़े ने आकाश की ओर देखा, आगे बढ़े, फुलमत भय से चिल्ला उठी। पाँड़े ने बच्चे को उसकी गोद से छीन लिया, 'मेरी राय पूछते हो मुखिया जी? तो सुनो, कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुँहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बाँधों को ठीक करना होगा....कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहू-बच्चे को छोड़कर भाग सकता है, किन्तु मैं कायर नहीं हूँ; मेरे जीते जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता....समझे।'

'तो यह बूढ़े पाँड़े जी की बहू' मुखिया व्यंग्य से बोला, 'पाप का फल तो भोगना ही होगा पाँड़े जी, समाज का दण्ड तो झेलना ही होगा।'

'जरूर भोगना होगा मुखिया जी....मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता। किन्तु मैं एक-एक के पाप गिनाने लगूँ, तो यहाँ खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा.....है कोई तैयार जाने को....?'

लोग अवाक् पाँड़े की ओर देख रहे थे, जो अपने कंधे से छोटे बच्चे को चिपकाये अपनी बैसाखी के सहारे खड़े थे, पत्थर की विशाल मूर्ति की तरह उन्नत, प्रशस्त, अटल, कर्मनाशा के लाल पानी में सूरज डूब रहा था।

जिन उद्धत लहरों की चपेट से बड़े-बड़े विशाल पीपल के पेड़ धराशायी हो गये थे, वे एक टूटे नीम के पेड़ से टकरा रही थीं, सूखी जड़ें जैसे सख्त चट्टान की तरह अडिग थीं, लहरें टूट-टूटकर पछाड़ खाकर गिर रही थीं। शिथिल....थकीं...पराजित...।

अभ्यास प्रश्न

1. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'कर्मनाशा की हार' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
3. कहानी-कला की दृष्टि से 'कर्मनाशा की हार' कहानी की समीक्षा कीजिए। **[2017 MF]**
4. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के नायक के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

अथवा 'कर्मनाशा की हार' के मुख्य पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
[2016 SA, 17 MA, MC, MD, 18 AA, 19 CN, CP, 20 ZE]

अथवा 'कर्मनाशा की हार' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्रांकन कीजिए।

5. कथानक की दृष्टि से 'कर्मनाशा की हार' कहानी पर प्रकाश डालिए।
6. प्रस्तुत कहानी का मुख्य पात्र आप किसे मानते हैं? सतर्क उत्तर लिखिए।
7. ''कर्मनाशा की हार' के बहाने लेखक का उद्देश्य सामाजिक रूढ़ियों की भर्त्सना करना है''—इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।
8. भैरो पाँड़े के मनोभाव में अचानक परिवर्तन के वास्तविक कारण पर प्रकाश डालिए।
9. ''कर्मनाशा की भयावह बाढ़ को शान्त करने की योजना के पीछे गाँववालों का न केवल अंधविश्वास वरन् उनकी ढकोसलापूर्ण नीति भी काम कर रही थी''—आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?
10. शिवप्रसाद सिंह की भाषा-शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
11. 'कर्मनाशा की हार' एक सफल कहानी है—इस कथन की पुष्टि कीजिए।
12. कहानी के प्रमुख तत्त्वों के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी की विशेषताएँ लिखिए।
13. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए। **[2016 SF]**

अथवा 'कर्मनाशा की हार' कहानी की कथावस्तु प्रस्तुत कीजिए।

14. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की कथावस्तु व शीर्षक की समीक्षा कीजिए।
15. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की विषय-वस्तु संक्षेप में लिखिए।
16. कहानी तत्त्वों के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी की समीक्षा कीजिए।
17. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के मुख्य पात्र के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
18. कहानी तत्त्वों के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी का वर्णन कीजिए। **[2019 CO]**
19. 'कथानक' के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए। **[2019 CQ]**
20. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के तथ्यों का उल्लेख कीजिए। **[2019 CR, 20 ZB**
21. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। **[2020 ZG]**